International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

आचार्य शंकर का योगिक व्यक्तित्व एवम् कृतित्व : एक विवेचन

डॉ. भारत भूषण सिंह[1], डॉ. संदीप ठाकरे[2]

[1]सहायक प्राध्यापक, योग विभाग ,हिमालयन गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड
[2]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान विभाग, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीयविश्वविद्यालय,अमरकंटक-484887(मध्यप्रदेश)

शोध - सारांश :
आचार्यपाद श्रीशंकराचार्य अद्वैतसिद्धान्तके प्रधान आचार्य ही नहीं , बल्कि क युगप्रवर्तक भी थे । उनके समयमें भारतवर्ष बौद्ध , जैन एवं कापालिकोंके प्रभावसे पूर्णतया प्रभावित हो चुका था । वैदिकधर्मका सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहा था । लोग वैदिक कर्म एवं उपासनासे उदासीन हो बड़ी तेजीके साथ सुगत गौतमबुद्ध और महावीरकी छत्रच्छायाकी शरण ले रहे थे । इसी कठिन अवसरपर उन्होंने प्रकट होकर डूबते हुए वैदिकधर्मका पुनरुद्धार किया । अपनी छोटी - सी आयुमें उन्होंने जो अलौकिक कार्य किये वह बड़ा विस्मयजनक उन्होंने जिस सिद्धान्तकी स्थापना की है उसपर संसारके बड़े - से - बड़े विचारक विद्वान् और दार्शनिक भी मन्त्रमुग्ध - से हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि वे दार्शनिक जगत्के सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न हैं , बड़े - बड़े विद्वानोंने उन्हें ' दार्शनिकसार्वभौम ' कहकर सम्मानित किया है ।शंकर के अनुसार, मन की वृत्तियाँ विषयों की ओर आकर्षित होती हैं और इस प्रकार मनुष्य को माया और अविद्या में फंसाती हैं। उन्होंने वृत्तिनिरोध को मानसिक वैराग्य (मानसिक विरक्ति) और ज्ञान द्वारा वृत्तियों को नियंत्रित करके अविद्या से मुक्ति की प्राप्ति के लिए एक महत्वपूर्ण साधना के रूप में प्रस्तावित किया है।आचार्य शंकर के अनुसार, वृत्तिनिरोध के माध्यम से मन की चंचलता, भ्रम, अविद्या और असत्य के विचारों का समाधान होता है और व्यक्ति अपनी सत्य स्वरूपता को पहचानता है। इस प्रकार, वृत्तिनिरोध योग विद्या और सत्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्ग को प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : अविद्या , अभ्यास, वैराग्य, वृत्तिनिरोध, चित्त,मोक्ष

प्रस्तावना:

आचार्य शंकरजिन्हें शंकराचार्य भी कहा जाता है, हिंदू धर्म के महानुभावों में से एक थे। वे भारतीय दर्शनिक और आध्यात्मिक गुरु थे जिन्होंने वेदांत दर्शन को प्रचारित किया और उसे आधुनिक भारतीय दर्शन की मुख्य धारा बनाया। उनका समय 8वीं या 9वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है।आचार्य शंकर ने अपने जीवनकाल में वेदांत दर्शन को विशेष महत्व दिया और उसे प्रचारित करने के लिए कई विद्वानों को गुरु बनाया। उन्होंने अद्वैत वेदांत को उज्ज्वल किया और इसे भारतीय आध्यात्मिकता की एक महत्वपूर्ण शाखा बनाया। उन्होंने ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या (ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है) का सिद्धांत प्रचारित किया।आचार्य शंकर अलौकिक प्रतिभासंपन्न महापुरुष थे। ये असाधारण विद्वत्ता, तर्कपटुता, दार्शनिक सूक्ष्मदृष्टि, रहस्यवादी आध्यात्मिकता, कवित्व शक्ति, धार्मिक पवित्रता, कर्तव्यनिष्ठा तथा सर्वातिशायी विवेक और वैराग्य की मूर्ति थे। इनका आविर्भाव आठवीं शती में केरल के मालावार क्षेत्र के कालड़ी नामक स्थान में नंबूदरी ब्राह्मण के घर में हुआ और निर्वाण बत्तीस वर्ष की आयु में हिमालय में केदारनाथ में हुआ। ज्ञान के प्राधान्य का साग्रह प्रतिपादन करनेवाले और कर्म को अविद्याजन्य माननेवाले संन्यासी आचार्य का समस्त जीवन लोकसंग्रहार्थ निष्काम कर्म को समर्पित था। उन्होंने भारतवर्ष का भ्रमण करके हिंदू समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए उत्तर में बदरीनाथ में, दक्षिण में शृंगेरी में, पूर्व में पुरी में तथा पश्चिम में द्वारका में, चार पीठों की स्थापना की।

गौड़पादाचार्य के प्रशिष्य एवं गोविंदपादाचार्य के शिष्य शंकराचार्य का दर्शन उनके प्रतिपाद्य ब्रह्म के समान पूर्वापरकोटिवर्ज्य और पूर्ण है। शंकराचार्य का स्थान विश्व के सर्वोच्च दार्शनिकों में है।

आदि शंकराचार्य के द्वारा लिखित ग्रंथों के तीन प्रकार के हैं—

1. भाष्य, 2. स्तोत्र तथा, 3. प्रकरण ग्रंथ

प्रस्थानत्रयी भाष्य

1. ब्रह्मसूत्र भाष्य:आचार्य शंकर की सबसे सुंदर तथा प्रौढ़ रचना मानी जाती है। ब्रह्मसूत्र इतने लघु अक्षरवाले तथा संक्षिप्त रूप में लिखे गए हैं कि बिना भाष्य की सहायता से उनका अर्थ नितांत कठिन है। शंकर ने बड़ी सरल, सुबोध तथा प्रौढ़ भाषा में इन सूत्रों के अर्थों को विस्तृत रूप से प्रकाशित किया है। इस भाष्य को पढ़कर साहित्य के पाठ करने का आनंद आता है। सारा भाष्य इतनी मधुर, कोमल तथा प्रसन्न शैली में लिखा गया है कि उसे पढ़कर मन मुग्ध हो जाता है। इतने कठिन दार्शनिक विषय को इस सुंदरता तथा सरलता से समझाया गया है, जिसका वर्णन करना कठिन

है। वाचस्पति मिश्र जैसे प्रौढ़ दार्शनिक ने इस भाष्य को केवल 'प्रसन्न-गंभीर' ही नहीं कहा है, अपितु इसे गंगाजल के समान पवित्र बतलाया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार गलियों का जल गंगा की धारा में पड़ने से पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार हमारी व्याख्या (भामती) भी इस भाष्य के संसर्ग से हम स्पष्ट कर पाते हैं—

इस भाष्य को शारीरिक भाष्य भी कहते हैं। 'शारीरिक' शब्द का अर्थ है शरीर में रहनेवाली आत्मा। इन सूत्रों के स्वरूप का विचार किया गया है। अतः इन सूत्रों को शारीरिक सूत्र और इस भाष्य को शारीरिक भाष्य कहते हैं।

2. गीता-भाष्य:भगवद्गीता का यह प्रख्यात भाष्य है। यह भाष्य दूसरे अध्याय के 11वें श्लोक से प्रारंभ होता है। आरंभ में आचार्य ने अपने भाष्य के दृष्टिकोण को भलीभाँति समझाया है। प्राचीन टीकाकारों के गीता के संबंध में जो विभिन्न मत थे, उनकी इन्होंने विशेष रूप से पर्यालोचना की है। इनके गीता भाष्य के लिखने की यह शैली है कि श्लोक में जो शब्द जिस क्रम से आए हैं, उनकी व्याख्या उसी क्रम से की गई है। आदि और अंत में उस श्लोक के तात्पर्य को दिखाने का प्रयत्न किया गया है। इस भाष्य में शंकर ने गीता की ज्ञान-परक व्याख्या की है, अर्थात् इन्होंने यह दिखलाया है कि गीता में मोक्ष प्राप्ति केवल तत्त्व-ज्ञान से ही बताई गई है, ज्ञान और कर्म के समुच्चय से नहीं। 48 गीता के प्राचीन टीकाकारों के मत में सर्वकर्मों के संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत अग्निहोत्रादि श्रौत और स्मार्त कर्मों के साथ ज्ञान का समुच्चय करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। वे लोग यह भी कहते हैं कि हिंसा आदि से युक्त होने के कारण वैदिक कर्मों को अधर्म का कारण मानना कथापि उचित नहीं है, क्योंकि भगवान् ने स्वयं शास्त्र कर्म को, जिसमें गुरु, भ्राता, पुत्र आदि की हिंसा होना अनिवार्य है, स्वधर्म बतलाकर प्रशंसा की है, परंतु शंकराचार्य ने इस मत का पर्याप्त खंडन कर ज्ञानपरक अर्थ की युक्तिमत्ता को प्रदर्शित किया है।

3. उपनिषद्-भाष्य:आचार्य के द्वारा लिखित उपनिषद् भाष्य ये हैं—

1. ईश, 2.केन-पद भाष्य तथा वाक्य भाष्य, 3.कठ, 4.प्रश्न, 5.मुंडक,
6.मांडूक्य, 7.तैत्तिरीय, 8.ऐतरेय, 9.छांदोग्य, 10.बृहदारण्यक, 11.श्वेताश्वतर,

आचार्य शंकराचार्य एक महान विचारक, दार्शनिक, और आध्यात्मिक गुरु थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व विशेष था जो आज भी उनके उद्दीपक और प्रभाव के रूप में मान्यता प्राप्त है। यहां कुछ महत्वपूर्ण विवरण हैं आचार्य शंकराचार्य ने वेदांत दर्शन को प्रमुखता दी और उसे आधुनिक भारतीय दर्शन की मुख्य धारा बनाया। उन्होंने वेदांत के तत्वों को गहनतापूर्वक अध्ययन किया और इसे अपनी भाष्यों के माध्यम से समझाने का प्रयास किया। शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत को प्रचारित किया। उन्होंने ब्रह्म सत्यम्

जगन्मिथ्या का सिद्धांत प्रवर्तित किया, जिसमें ब्रह्म (अद्वैत ब्रह्म) ही सत्य है और जगत् (संसार) मिथ्या है। यह सिद्धांत आध्यात्मिकता और मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग को समझाता है।

ज्ञान और अज्ञान- सम्पूर्ण विभिन्न प्रतीतियोंके स्थानमें एक अखण्ड सच्चिदानन्दघनका अनुभव करना ही ' ज्ञान ' है तथा उस सर्वाधिष्ठानपर दृष्टि न देकर भेदमें सत्यत्वबुद्धि करना ही ' अज्ञान ' है । जिस प्रकार नाना प्रकारके आभूषण तत्त्वदृष्टिसे सुवर्णमात्र हो हैं , तरह - तरहके मृन्मय पात्र केवल मृत्तिकामात्र ही होते हैं तथा तरंग और भँवर आदि जलसे अभिन्न ही होते हैं , उसी प्रकार यह अनेकविधभेदसंकुलित संसार केवल शुद्ध परब्रह्म ही है , उससे भिन्न कहीं कोई वस्तु नहीं है — और वही अपना आत्मा है । इस प्रकारका अभेदबोध ही ' ज्ञान ' कहलाता है । जबतक ऐसा बोध नहीं होता तबतक जीव आवागमनके चक्रसे मुक्त नहीं होता , ऐसा बोध होते ही उसकी दृष्टिमें जगत्का अत्यन्ताभाव हो जाता है और वह दूसरोंकी दृष्टिमें शरीर रहते हुए भी स्वयं मुक्त हो जाता है साधन– भगवान् शंकराचार्यने श्रवण - मनन और निदिध्यासनको ज्ञानका साक्षात् साधन स्वीकार किया है । किंतु इनकी ब्रह्मतत्त्वकी जिज्ञासा होनेपर ही है तथा जिज्ञासाकी उत्पत्तिमें प्रधान सहायक दैवी सम्पत्ति है । आचार्यका मत है कि जो मनुष्य विवेक , वैराग्य , शम आदि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता इन चार साधनोंसे सम्पन्न है , उसीको चित्तशुद्धि होनेपर जिज्ञासा हो सकती है । इस प्रकारकी चित्तशुद्धिके लिये निष्कामकर्मानुष्ठान बहुत उपयोगी है भक्ति - भगवान् शंकरने भक्तिको ज्ञानोत्पत्तिका प्रधान साधन माना है फलरूपसे तो वे ज्ञानहीको स्वीकार करते हैं । भक्तिका लक्षण करते हुए वे विवेक - चूडामणिमें कहते हैं - ' स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते । ' अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूपका स्मरण करना ही ' भक्ति ' कहलाता है । आत्मजिज्ञासुके लिये वस्तुतः प्रधान भक्ति ही है ।

आचार्य शंकर के योगिक विचारों का मुख्य ध्यान आध्यात्मिक विकास और मोक्ष की प्राप्ति पर था। उन्होंने योग को जीवन का महत्वपूर्ण अंग माना और इसे अपनी दर्शनिक विचारधारा में सम्मिलित किया। यहां कुछ महत्वपूर्ण योगिक विचार हैं जिन्हें आचार्य शंकर ने प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत किया:

कर्म योग: आचार्य शंकर ने कर्म योग को भी महत्व दिया और समर्पित कर्म के माध्यम से चित्त शुद्धि होती है ऐसा उनका प्रबल विश्वास था । शंकर ने भगवद्गीता में निष्काम कर्म के महत्व को बताया है। उन्होंने कहा है कि कर्म को समर्पित होकर और फल की

आकांक्षा के बिना किया जाना चाहिए। यह मनुष्य को अज्ञान से मुक्ति की ओर ले जाता है।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित् कर्मकोटिभिः (विवेक चूड़ामणि -11)

– अर्थात कर्म चित्तकी शुद्धिके लिये ही है , वस्तूपलब्धि (तत्त्वदृष्टि) के लिये नहीं । वस्तु - सिद्धि तो विचारसे ही होती है , करोड़ों कर्मोंसे कुछ भी नहीं । हो सकता ।

ज्ञान योग: आचार्य शंकर ने ज्ञान योग को मोक्ष के प्रमुख साधना मार्ग के रूप में प्रशंसा की। उनके अनुसार, सत्य ज्ञान की प्राप्ति से ही मनुष्य अज्ञान से मुक्त हो सकता है। वेदांत दर्शन और विचारधारा के माध्यम से सत्य के ज्ञान की प्राप्ति होती है।

भक्ति योग: आचार्य शंकर ने भक्ति योग को भी मार्ग के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि प्रेम, भक्ति और ईश्वर में समर्पण के माध्यम से मनुष्य अपने अहंकार को छोड़कर आध्यात्मिक आनंद को प्राप्त कर सकता है।

मोक्षकारणसामग्र्यांभक्तिरेव गरीयसी
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते
स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः ।(विवेक चूड़ामणि -32)

मुक्तिकी कारणरूप सामग्रीमें भक्ति ही सबसे बढ़कर है और अपने वास्तविक स्वरूपका अनुसन्धान करना ही ' भक्ति ' कहलाता है । कोई कोई ' स्वात्म - तत्त्वका अनुसन्धान ही भक्ति है ' - ऐसा कहते हैं ।

बंधन और मोक्ष:

आचार्य शंकर की अवधारणा में बंधन और मोक्ष दो प्रमुख अवस्थाएं हैं। यहां उनकी बंधन और मोक्ष संबंधी अवधारणाओं की विस्तृत व्याख्या है - **बंधन (संसारिक बंधन)**शंकर के अनुसार, मनुष्य संसारिक बंधनों में उलझा हुआ है, जिन्हें संसार के व्यवहार में प्रतीत किया जाता है। यह बंधन अज्ञान, मोह, अहंकार, कर्म, और संसारिक स्वार्थ में उभरता है। यह बंधन अनंत चरमरूप सत्य से मनुष्य को अलग करता है और उसे दुःख में फंसा देता है।मोक्ष **(आत्मनिर्वाण):** शंकर के अनुसार, मोक्ष या मुक्ति हमारे संसारिक बंधनों से मुक्त होने की स्थिति है। यह आध्यात्मिक आनंद, सत्य ज्ञान,

और आत्मिक समृद्धि की पूर्णता है। मोक्ष को प्राप्त करने के लिए, आचार्य शंकर ने ज्ञान योग की महत्वपूर्णता पर जोर दिया। जब मनुष्य परमार्थिक सत्य को प्राप्त करता है और अपने अहंकार को छोड़ता है, तब वह मोक्ष की प्राप्ति करता है।

ध्यान- शंकर ने ध्यान की महत्वपूर्ण आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रशंसा की। उन्होंने ध्यान को मन की शांति, आत्मा की प्राप्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण माना शंकर ने ध्यान को मन के विचरण और एकाग्रता का साधन माना। ध्यान के माध्यम से मन को वश में किया जा सकता है और वह आत्मा की प्राप्ति की ओर प्रवृत्त होता है। आचार्य शंकर ने ध्यान के बहुत सारे लाभों का वर्णन किया है। उनके अनुसार, ध्यान से मन की शांति होती है, अज्ञान और मिथ्या धारणाओं का नाश होता है, और आत्मा की साक्षात्कार होती है। ध्यान के माध्यम से मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है।

आचार्य शंकर के दर्शन में **अभ्यास** और **वैराग्य** महत्वपूर्ण साधन हैं। वे मानते थे कि अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से ही आध्यात्मिक उन्नति और मुक्ति प्राप्ति संभव होती है।अभ्यास विशेष रूप से मन को नियंत्रण में रखता है और ध्यान मेंसहायक है। आचार्य शंकर के अनुसार, मन की उल्लेखनीय अस्थिरता हमें संसारिक बन्धनों में जकड़े रखती है। इसलिए, मन को नियंत्रित करके और उसे एकाग्र करके, हम आध्यात्मिक सत्य की अनुभूति को प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान के माध्यम से हम अपने स्वभाव के पीछे स्थित सच्चिदानन्द ब्रह्म को पहचान सकते हैं।वैराग्य, दुःखों और सुखों के साथ आत्मस्वीकार करने की क्षमता है। आचार्य शंकर द्वारा प्रचारित किए गए सिद्धान्तों के अनुसार, संसार में आनंद की स्थिति प्राप्त करने के लिए हमें संग्रह करने की आवश्यकता नही होती है। वैराग्य तात्कालिक सुखों को छोड़कर आध्यात्मिक आनंद की खोज करने का मार्ग है।

शंकर के अनुसार, मन की वृत्तियाँ विषयों की ओर आकर्षित होती हैं और इस प्रकार मनुष्य को माया और अविद्या में फंसाती हैं। उन्होंने वृत्तिनिरोध को मानसिक वैराग्य (मानसिक विरक्ति) और ज्ञान द्वारा वृत्तियों को नियंत्रित करके अविद्या से मुक्ति की प्राप्ति के लिए एक महत्वपूर्ण साधना के रूप में प्रस्तावित किया है।आचार्य शंकर के अनुसार, वृत्तिनिरोध के माध्यम से मन की चंचलता, भ्रम, अविद्या और असत्य के विचारों का समाधान होता है और व्यक्ति अपनी सत्य स्वरूपता को पहचानता है। इस

प्रकार, वृत्तिनिरोध योग विद्या और सत्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्ग को प्रदान करता है।

शंकर ने वेदान्त दर्शन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं को समन्वय करने की योजना रखी। इसे समन्वयवाद कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है "एकत्रीकरण" या "मेल-मिलाप"। यह दर्शाता है कि विभिन्न धर्मों और दर्शनों के पीछे मूलतः एक सत्य और आध्यात्मिकता की एकता है।समन्वयवादी आचार्य शंकर ने वेदान्त दर्शन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक संस्कृतियों के तत्वों को समझाने का प्रयास किया। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि ब्रह्म, अद्वैत ब्रह्म, परमात्मा या आत्मा, जैसे विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाले परम सत्य को सभी धर्मों और दर्शनों ने अपनी अपनी भाषा में व्यक्त किया है। उनके अनुसार, विभिन्न धार्मिक परंपराओं के माध्यम से लोग एक ही उद्देश्य, आत्मा के अभिव्यक्ति और मोक्ष की प्राप्ति की ओर प्रवृत्त होते हैं। शंकर ने वेदान्त दर्शन के माध्यम से विश्व को एक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। उनके विचार और उनके द्वारा स्थापित किए गए तत्वों ने धार्मिक और दार्शनिक संदर्भ में व्यापक प्रभाव डाला है। शंकर की ग्रंथ संपदा संस्कृत साहित्य और वेदान्त दर्शन के विकास में महत्वपूर्ण है। उन्होंने विभिन्न प्रकरण ग्रंथों, भाष्यों और उपनिषदों की टिप्पणियों को लिखा है, जो वेदान्त दर्शन के मूल तत्वों को स्पष्ट करते हैं। गुरु-शिष्य संबंध को शंकर ने अध्यातिम्क विकास के लिये महत्वपूर्ण माना और इसे अपनाया। उन्होंने शिष्यों को ज्ञान के मार्ग पर प्रेरित किया ।आचार्यपाद श्रीशंकराचार्य अद्वैतसिद्धान्तके प्रधान आचार्य ही नहीं , बल्कि क युगप्रवर्तक भी थे । उनके समयमें भारतवर्ष बौद्ध , जैन एवं कापालिकोंके प्रभावसे पूर्णतया प्रभावित हो चुका था । वैदिकधर्मका सूर्य अस्ताचलकी ओर जा रहा था । लोग वैदिक कर्म एवं उपासनासे उदासीन हो बड़ी तेजीके साथ सुगत गौतमबुद्ध और महावीरकी छत्रच्छायाकी शरण ले रहे थे । इसी कठिन अवसरपर उन्होंने प्रकट होकर डूबते हुए वैदिकधर्मका पुनरुद्धार किया । अपनी छोटी - सी आयुमें उन्होंने जो अलौकिक कार्य किये वह बड़ा विस्मयजनक उन्होंने जिस सिद्धान्तकी स्थापना की है उसपर संसारके बड़े - से - बड़े विचारक विद्वान् और दार्शनिक भी मन्त्रमुग्ध - से हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि वे दार्शनिक जगत्के सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न हैं , बड़े - बड़े विद्वानोंने उन्हें ' दार्शनिकसार्वभौम ' कहकर सम्मानित किया है । हम यहाँ उनके सिद्धान्तका यत्किंचित् दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न करते हैं । आत्मा और अनात्मा- -भगवान् शंकरने ब्रह्मसूत्रका

भाष्य लिखते समय सबसे पहले आत्मा और अनात्माका विवेचन किया है । यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो सम्पूर्ण प्रपंचको दो प्रधान भागों में विभक्त किया जा सकता है द्रष्टा और दृश्य । इनमें एक तत्त्व वह है जो सम्पूर्ण प्रतीतियोंका अनुभव करनेवाला है और दूसरा तत्त्व वह है जो अनुभवका विषय है । इनमें समस्त प्रतीतियोंके चरम साक्षीका नाम ' आत्मा ' है तथा जो कुछ उसका विषय है वह सब ' अनात्मा ' है । आत्मतत्त्व नित्य , निश्चल , निर्विकार , असंग , कूटस्थ , एक और निर्विशेष है बुद्धिसे लेकर स्थूल भूतपर्यन्त जितना भी प्रपंच है उसका आत्मासे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । जीव अज्ञानके कारण ही देह और इन्द्रियादिसे अपना तादात्म्य स्वीकारकर अपनेको अंधा - बहरा , मूर्ख - विद्वान् , सुखी - दुःखी तथा कर्ता भीडा मानता है । इस प्रकारसे बुद्धि आदिके साथ जो आत्माका तादात्म्य हो रहा है उसे आचार्यने ' अध्यास ' शब्दसे निर्दिष्ट किया है । आचार्यक सिद्धान्तानुसार तो सम्पूर्ण प्रपंचकी सत्यत्वप्रतीति अध्यास या मायाके ही कारण है । इसीसे वादको अध्यासवाद या मायावाद भी कहते हैं । इसका तात्पर्य यही है कि जितना दृश्यवर्ग है वह सब मायाके कारण हो विभिन्न - सा प्रतीत होता है वस्तुतः तो वह एक अखण्ड , शुद्ध , चिन्मात्र ही है ।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध पत्र में आचार्य शंकर के योगिक व्यक्तित्व एवम् कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । भगवान् शंकराचार्यने श्रवण - मनन और निदिध्यासनको ज्ञानका साक्षात् साधन स्वीकार किया है । किंतु इनकी ब्रह्मतत्त्वकी जिज्ञासा होनेपर ही है तथा जिज्ञासाकी उत्पत्तिमें प्रधान सहायक दैवी सम्पत्ति है । आचार्यका मत है कि जो मनुष्य विवेक , वैराग्य , शम आदि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षता इन चार साधनोंसे सम्पन्न है , उसीको चित्तशुद्धि होनेपर जिज्ञासा हो सकती है । इस प्रकारकी चित्तशुद्धिके लिये निष्कामकर्मानुष्ठान बहुत उपयोगी है। शंकर ने वेदान्त दर्शन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं को समन्वय करने की योजना रखी। इसे समन्वयवाद कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है "एकत्रीकरण" या "मेल-मिलाप"। यह दर्शाता है कि विभिन्न धर्मों और दर्शनों के पीछे मूलतः एक सत्य और आध्यात्मिकता की एकता है।समन्वयवादी आचार्य शंकर ने वेदान्त दर्शन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक संस्कृतियों के तत्वों को समझाने का प्रयास किया।

संदर्भग्रंथसूची

1. सिन्हा, हरेंद्र प्रसाद : भरतीय दर्शन की रुपरेखा , मोतीलाल बनारसीदास . दिल्ली-19995
2. शर्मा, चन्द्रधर: भारतीय दर्शन , मोतीलाल बनारसीदास . दिल्ली-1998
3. विनोबा: गुरुबोध सर , परमधाम प्रकाशन ,पवनार-2009
4. विनोबा: स्थितप्रज्ञ –दर्शन,सर्व सेवा संघ वाराणसी -2010
5. स्वामी निर्वेदानंद : हिन्दू धर्म की रुपरेखा – अद्वैत आश्रम,कोलकता-2015
6. हिन्दू संस्कृति अंक ; गीता प्रेस ,गोरखपुर
7. विवेक –चूडामणि:गीता प्रेस ,गोरखपुर
8. अपरोक्षानुभूति:गीता प्रेस ,गोरखपुर
9. स्वामी अपूर्वानंद : रामकृष्णमठ,धन्तोली, नागपुर
10. अभिलाषदास: शंकारचार्य क्या कहते है ? –कबीरपारख संस्थान,इलाहबाद-2010
11. अभिलाष दास : उपनिषद् सौरभ,कबीरपारख संस्थान,इलाहबाद-2008
12. उपनिषद् अंक :गीता प्रेस ,गोरखपुर
13. श्रीवास्तव,कमल शंकर : आदिशंकराचार्य एवं अद्वैत – प्रभात प्रकाशन दिल्ली
14. गोयन्दका, हरिकृष्णदास: श्रीमद्भागवतगीता (शांकर भाष्य) -गीता प्रेस ,गोरखपुर
15. योगांक- गीता प्रेस ,गोरखपुर
16. गोयन्दका, हरिकृष्णदास: वेदांत दर्शन (ब्रह्मसूत्र) -गीता प्रेस ,गोरखपुर